वेदों में सौहार्द चिन्तन

दुष्यन्त कुमार
शोधछात्र, संस्कृत–विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला

विश्व की प्राचीन संस्कृतियों में वैदिक संस्कृति का अपना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। मानव–संस्कृति की परम्परागत महान् विरासत का जब हम सूक्ष्म दृष्टि से अवगाहन करते हैं तो हमें स्वीकार करना पड़ता है कि अन्तश्चेतना को प्रभावित एवं प्रेरित करने में वैदिक संस्कृति का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वर्तमान युग के मीमांसा–शास्त्रियों तथा इतिहास–वेत्ताओं ने अतीत के मनीषियों द्वारा विवेचित एवं निर्धारित मान्यताओं का परिशीलन करने पर जो निष्कर्ष निकाले हैं तदाधारित उन सभी ने एकमत से स्वीकार किया है कि वैदिक संस्कृति की विश्व पर अमिट छाप है।

वर्तमान में वेद की प्रासङ्गिकता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वैदिक युग का सामाजिक जीवन पारस्परिक एकता, सहयोग, सद्भाव और संगठन पर आधारित था। व्यक्ति का अस्तित्व समाज पर अवलम्बित तथा जीवित था और व्यक्ति ही समाज का निर्माता भी था। वैदिक समाज एकसूत्र में बंधा हुआ था। वैदिक युग की समानता तथा एकता का उदाहरण अन्यत्र मिलना कठिन है। व्यक्ति अपनी सीमाओं में बंधा रहकर समाज के प्रति उत्तरदायी एवं कर्तव्यनिष्ठ बना रहे, इसके लिये नियम बनाये गये थे, जिसके फलस्वरूप सारा समाज संगठित था।

वैदिक राष्ट्र के संगठन और एकता के अनेक उदाहरण वेदमंत्रो में सुरक्षित हैं। ऋग्वेद के एक मंत्र में कहा गया है कि 'हे मनुष्यो! तुम परस्पर मिल कर रहो, परस्पर मिलकर प्रेम से वार्तालाप करो तथा तुम सब का मन एक समान होकर ज्ञान प्राप्त करें, जिस प्रकार पूर्व के लोगों ने एकमत होकर ज्ञान सम्पादन करते हुए सेवनीय ईश्वर की उत्तम प्रकार से उपासना की है, उसी प्रकार तुम भी एकतम होकर अपना प्राप्य ग्रहण करो।[1]

एकता और संगठन की प्रवृत्ति का उत्तरोत्तर विकास करने के लिये धार्मिक एवं सामाजिक अनुष्ठानों के समय इस पर विशेष बल दिया जाता था। पुरोहित जो कि वैदिक युग का विधि व्यवस्थापक तथा नेता हुआ करता था। ऋग्वेद की एक ऋचा में यजमान को सम्बोधित करते हुए कहता है कि 'तुम्हारा संकल्प एक हो, हृदय एक हो मन एक हो, जिससे तुम्हारा परस्पर कार्य पूर्णरूप से सम्पन्न हो'।[2]

वैदिक संस्कृति में परस्पर कल्याण की भावना सर्वत्र निहित है। इसमें व्यापक विश्वसनीय भातृभावना की कल्पना के साथ पारस्परिक सहयोग एवम् एकता द्वारा मनुष्य–मनुष्य के प्रति उन्नति कल्याण तथा सौहार्दता का भाव सन्निहित है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की इस उदात्त विचारधारा से श्रेष्ठ समाजवाद का अन्य उदाहरण क्या हो सकता है जो कि वैदिक वाङ्मय में सन्निविष्ट है।

विश्व सौहार्द्रता की सुन्दर भावना अर्थवेद के इस मन्त्र से अभिव्यक्त होती है कि 'हे सूर्य! उदय को प्राप्त हो, उदय को प्राप्त हो और अपने तेज से मुझे प्रकाशित करो। मुझ पर ऐसी कृपा कीजिए कि जिससे मैं मनुष्य मात्र के प्रति चाहे मैं उनको देखता हूँ अथवा जिनको नहीं भी देखता हूँ, उनके विषय में मुझे सुमति वाला कर'।[3]

अथर्ववेद के ही एक अन्य मन्त्र में कहा गया है कि 'मनुष्यों! एक भाव, एक विचार और विद्वेष से रहित मैं तुमको बनाता हूँ। तुम एक दूसरे के प्रति प्रेमयुक्त हो जाओ, एक–दूसरे को चाहो, जैसे अहिंस्या गौ अपने उत्पन्न बछड़े को चाहती है'।[4]

वेदों के इन सन्दर्भों को देखकर वैदिक युग की भातृत्व भावना का सहज में ही अवलोकन हो जाता है। पारस्परिक सहयोग और सद्भाव के प्रेरक अथर्ववेद के एक अन्य मन्त्र में कहा गया है कि 'छोटे–बड़े के रूप में परस्पर व्यवहार करते हुए, समान चित्त वाले होकर, समान कार्य वाले और एक ही कार्य को एक नेता के अधीन होकर पूरा करते हुए कभी पृथक्–पृथक् न हो। एक दूसरे के प्रति मधुर वचनों को बोलते हुए आओ–जाओ। मैं तुम्हें एक ही मार्ग–कार्य में प्रर्वतमान एवं समान मनवाला बनाता हूँ'।[5]

एकता और अन्योन्यापेक्षा का ऐसा आदर्श एवम् अनुकरणीय उदाहरण सम्भवतः ही अन्यत्र देखने को मिल सकता है जैसा कि यजुर्वेद के मन्त्र में द्रष्टव्य है। इस मन्त्र में कहा गया है कि 'तु मुझे दे और मैं तुझे देता हूँ, तु मुझसे उत्तम गुण धारण कर और मैं तुझसे उत्तम गुण ग्रहण करता हूँ, यह मैं लेता हूँ और यह तू स्वीकार कर।[6]

वैदिक युग के समाज में जहाँ एक ओर निरन्तर उद्योगशील तथा तत्पर रहकर प्रभूत यश और धनार्जन करने की प्रवृत्ति का पता चलता है तो वहीं दूसरी ओर स्वार्जित सम्पत्ति को मुक्त हाथ वितरित करने की उदारता भी दृष्टिगोचर होती है। अतः इसी सन्दर्भ में वैदिक ऋषि कहता है कि 'सौ हाथों से संचय करो और सहस्त्र हाथों से उसका वितरण करो'।[7] यह प्रवृत्ति न केवल उदारता एवं

निस्पृहता की द्योतक है; प्रत्युत उस समाजवाद की भी प्रतीक है, जिसमें किसी प्रकार के अनावश्यक संचय के लिये कोई स्थान नहीं है।

राष्ट्रिय एकता की भावना को ऋषियों ने अधिक उदार बनाने के उद्देश्य से मनुष्य को निरपेक्ष जीवन–यापन करने के लिये प्रेरित किया है। यजुर्वेद के एक मन्त्र में व्यक्तिगत स्वत्व तथा अधिकार से उत्पन्न होने वाली विषमता को दूर करने के लिये ऋषि कहता है कि यह सब जो कुछ भी इस संसार में जड़–चेतन रूप चराचर जगत् है, वह ईश्वर से व्याप्त है, उस ईश्वर क द्वारा दिये गये पदार्थों का त्यागपूर्वक भोग करो अर्थात् सांसारिक पदार्थों में आसक्ति मत रखो तथा किसी के धन का लोभ मत करो'।[8]

इस प्रकार आज जिस सर्वसामान्य जीवन की स्थापना के लिये विश्व में समाजवादी व्यवस्था का प्रचार–प्रसार किया जा रहा है, वैदिक समाज में वह सहज सुलभ था। वैदिक ऋषि जीवन के प्रति सदैव दृढ़ आस्थावान रहे हैं। समाज को उन्होंने सुख–शान्ति, उत्साहयुक्त तथा उल्लासमय जीवन व्यतीत करने के लिये प्रेरित किया है। वैदिक ऋषि सदा समुन्नत होने की आकांक्षा करते हुए कहता है कि 'हम सदा ही उत्तम विचार करने वाले हों तथा आकाश में ऊपर सञ्चार करने वाले सूर्य को हम देखें,[9] अर्थात् उल्लासमय जीवन व्यतीत करते हुए उदीयमान सूर्य की भाँति जीवन को उन्नत बनायें।

सामञ्जस्य एवम् एकता की भावना से परिपूर्ण अथर्ववेद में एक मन्त्र के माध्यम से उल्लेख है कि 'भाई अपने भाई से द्वेष न करें और बहन अपनी बहन से द्वेष न करें। एक मार्ग पर चलने वाले और एक ही कर्म के करने वाले होकर कल्याणी वाणी के द्वारा परस्पर सम्भाषण करो'।[10]

पारिवारिक सामरस्य तथा सामञ्जस्य का प्रतिपादक अथर्ववेद में एक अन्य मन्त्र के माध्यम से कहा गया है कि 'पुत्र पिता के लिये अनुकूल कर्म करें और माता के साथ मन के शुभ भाव से व्यवहार करें, पत्नी पति के साथ सदा मधुर भाषण करती रहे'।[11]

विश्वबन्धुत्व की भावना से ओतप्रोत वैदिक संस्कृति के कारण अद्यतन् हमारी संस्कृति जीवित है। वैदिक ऋषि समाज के कल्याण को अपना ध्येय मानते थे। इस प्रकार सबके कल्याण को देखते हुए 'आत्मज्ञानी ऋषियों ने प्रारम्भ में तप किया, जिसके फलस्वरूप राष्ट्र, बल और ओज का निर्माण हुआ, अतः सभी लोग राष्ट्र के लिये कल्याणार्थ कर्म करें'।[12]

वेद में ऋषि ने प्रार्थना के द्वारा समस्त लोक के कल्याण की कामना को अभिव्यक्त किया है। उन्होंने व्यष्टि कल्याण को त्यागकर समष्टि कल्याण की

परिकल्पना की है। इसी उदात्त भावना को ऋषि एक मन्त्र के माध्यम से प्रकट करता है कि 'हे ईष्वर सब बुराईयों को दूर करो और जो भलाई है उसको हम सबके पास ले आओ'।[13]

ऋग्वेद में एक अन्य मन्त्र के माध्यम से सम्पूर्ण मानवता के कल्याण की सुन्दर भावना दृष्टिगोचर होती है। इसमें ऋषि अपने उद्गार प्रकट करता है कि 'हे सोम और रूद्र! विविध प्रकार के उन अनर्थों को दूर करो, जो रोग हमारे घर में प्रविष्ट हुए हैं उस दुरवस्था को दूर हटा दो तथा हमें कल्याणकारी मंगल प्राप्त हो'।[14]

परस्पर सौहार्द तथा उदारतापूर्वक दान देने से सम्बन्धित वेद में अनेक मन्त्रों का उल्लेख है। इसमें एक मन्त्र के माध्यम से वेद अपने अभिप्राय को प्रकट करता है कि 'कृपण–अदाता मनुष्य व्यर्थ ही सम्पत्ति इत्यादि प्राप्त करता है। मैं यह सत्य कहता हूँ कि उसका वह मरण ही है; क्योंकि जो न तो देवों को हवि अर्पण करता है और न अपने समान पोष्य मित्र को देता है, केवलमात्र स्वयं ही खाता है, वह केवल पाप ही प्राप्त करता है।[15]

कर्म समस्त मानवता को उन्नति तथा अवनति के पथ पर अग्रसर करता है। यह कर्म ही है जो मनुष्य को मनुष्य बनाता है। एक मन्त्र के माध्यम से कर्मविषयक सिद्धान्त को वेद कहता है कि 'कर्म ऐसे हों जो कल्याण करने वाले हों। वस्तुतः ये कर्म किसी के दबाव में आकर न किये जायें अपितु स्वयंस्फूर्ति से किये जायें। इन उत्तम कर्मों के द्वारा मनुष्य अपनी उन्नति का मार्ग प्रषस्त करें तथा उन्नति के मार्ग में किसी तरह को रूकावट उत्पन्न न हो एवं प्रतिक्षण हम लोग सुरक्षित रहें। इसके अतिरिक्त दिव्य ज्ञानीजन उन्नति के कार्य में सहायक हों'।[16]

यजुर्वेद में लोककल्याण के निमित्त एक मन्त्र के द्वारा ऋषि कहता है कि 'इस लोक में कर्म करते हुए हम सौ वर्ष जीने की इच्छा करें। इस प्रकार मनुष्यत्व का अभिमान रखने वाले तेरे लिये इसके अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है, जिससे कि तू कर्मों में लिप्त न हों'। [17]

यजुर्वेद का ही एक अन्य मन्त्र सामाजिक वैमनस्य तथा द्वेष को त्यागकर अपने समान सभी प्राणियों को देखता हुआ अर्थात् समत्व का उद्घोष करता हुआ कहता है कि 'जो सम्पूर्ण भूतों को आत्मा में ही देखता है और समस्त भूतों में भी आत्मा को ही देखता है, वह किसी का संषय नहीं करता है।'[18]

वैदिक ऋषियों ने न केवल मनुष्य प्रत्युत सभी प्राणियों के लिये परस्पर सौहार्द तथा कल्याण की भावना व्यक्त की है। उन्होंने मनुष्य तथा पितर में परस्पर

सामञ्जस्य की उदात्त भावना से ओतप्रोत एक मन्त्र के द्वारा कहा है कि 'उत्तम सभा में उत्तम आसनों और श्रेष्ठ पदों पर स्थित पालक जनो! तुम्हारे लिये इन अन्नादि भोग्य पदार्थों को हम उत्पन्न करते हैं, तुम लोग अपनी सुरक्षा के लिये उनको प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करो, तुम लोग अत्यन्त शान्तिदायक सुखकारीरक्षण सामर्थ्य के साथ आगमन करो और हमको सुख प्रदान कर व हमारे अन्दर जो रोग और भय हैं, उसको दूर करके पाप और दुःख से रहित सुख प्रदान करो'।[19]

वर्तमान काल में विवाह–विच्छेद की घटनाओं का प्रचलन अधिक बढ़ रहा है। जिसके फलस्वरूप पारिवारिक सौहार्दता तथा सामञ्जस्यता समाप्त सी हो रही हैं। इसी दृष्टिकोण के कारण तथा पति एवं पत्नी में मधुर सम्बन्ध बतलाने के लिये ऋषि प्रार्थना करता है कि 'सभी देवता हम दोनों वर–वधू के हृदयों को मिलायें, जल देवता हमारे हृदय की मिलायें, वायु देवता हमारे हृदयों को मिलायें, धारण करने वाला प्रभु हमारे हृदयों को मिलायें और उपदेष करने वाली वेद–वाणी हम दोनों को एक साथ मिलायें।[20]

राष्ट्रीय एकता का सूचक यजुर्वेद का एक मन्त्र कहता है कि 'हे राजा और प्रजा तुम दोनों एक दूसरे को सुख और रक्षा प्रदान करो दोषों से रहित होकर तुम दोनों वृद्धि को प्राप्त करो। तुम दोनों पालन कार्यों में उत्तम रहो और अग्नि के समान तेजस्वी पुरूषों का पालन करो'।[21]

राज्य–व्यवस्था किसी भी राष्ट्र अथवा देष का अभिन्न अङ्ग है। इसी राज्य व्यवस्था का परिचायक तथा राजा को विनयषीलता का उद्बोधक यजुर्वेद के एक अन्य मन्त्र का कथन है कि 'हे प्रभु! जो पाप हम ग्राम में, वन में, सभा में, अपनी इन्द्रियों के प्रति, शूद्र के प्रति और वैष्य के प्रति करते हैं तथा किसी प्रजाजन के धर्म–पालन को भङ्ग करने में करें, तुम हमारे उस पाप का नाष करो'।[22]

हमारी इस देह में मन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस मन के द्वारा ही हम शुभ तथा अषुभ कर्मों में प्रवृत्त होते हैं तथा बन्धन और मोक्ष का कारण भी यह हमारा मन ही है'। इसी मन को निर्मल करने तथा शुभ संकल्प युक्त बनाने की प्रार्थना करता हुआ यजुर्वेद एक मन्त्र के माध्यम से कहता है कि 'जागते हुए पुरुष का जो मन दूर–दूर तक जाता है और उसी प्रकार सोते हुए पुरुष का दूर–दूर जाता है, दूर तक पहुँचने वाला और प्रकाषकों का भी प्रकाषक वह मन शुभ संकल्प वाला हो'।[23]

वैदिक संस्कृति की समष्टिमय लोक हितकारी भावना यजुर्वेद के एक मन्त्र से अभिव्यक्त होती है, जिसमें दिन, रात, इन्द्र, अग्नि, वरूण, पूषा तथा सोम से कल्याणकारी होने की प्रार्थनाा की गई है। इसमें कहा गया है कि' 'दिन हमारे लिये कल्याणकारी हों, हमारे लिये रात्रियाँ कल्याण को धारण करें। इन्द्र और अग्नि रक्षणों द्वारा हमारे लिये कल्याणकारी हों। इन्द्र और वरूण अन्न देने वाले होकर हमारे लिये कल्याणकारी हों। इन्द्र और पूषा ऐष्वर्यों को देने के लिये हमारे लिये कल्याणकारी हों। इन्द्र और सोम उत्तम प्रसव के लिये और रोगों के शमन एवं भय को निवारण करने के लिये हमारे लिये कल्याणकारी हों' ।[24]

ऋग्वेद के एक मन्त्र में लोकहितकारी उपदेष को अभिव्यक्त करते हुए ऋषि का कथन है कि 'हे कितव! पासे खेलना छोड़ दे, खेतीबाड़ी कर, कृषि आदि सद्व्यवसाय से उपार्जित धन के द्वारा सुखपूर्वक जीवन यापन कर, ये तेरी गाय हैं, यह तेरी पत्नी है। यह सदुपदेष परम कृपालु सविता ने मुझे दिया है।[25]

परस्पर मैत्री का सूचक अथर्ववेद एक मन्त्र के माध्यम से कहता है कि 'धनुष से डोरी को उतारने के समान तेरे हृदय से क्रोध को हटाता हूँ। जिससे एक मन वाले होकर मित्र के समान हम परस्पर मिलकर रहें' ।[26]

भ्रष्टाचार तथा अनीति से अर्जित धन का वेद में तिरस्कार किया गया है। इसी मत का प्रतिपादन करते हुए वेद में एक मन्त्र का उल्लेख है कि 'जो गिराने वाली सेवन करने अयोग्य लक्ष्मी मेरे ऊपर आ गई है, जैसे बेल वृक्ष पर चढ़ती है। हे सविता देव! डसको यहाँ से हमसे दूसरे स्थान पर रख। सुवर्ण के आभूषण धारण करने वाला तू हमें धन दें' ।[27]

अर्थात् कहने का तात्पर्य यह है कि जो गिराने वाला ऐष्वर्य मेरे पास आ गया है, वह मुझसे दूर हो तथा हमें शुभ ऐष्वर्य प्राप्त हो।

सामवेद के एक मन्त्र में परोपकार की भावना को आधार मानकर ऋषि धन की याचना करता हुआ कहता ह कि 'हे सोम! सैंकड़ों जिसकी प्रषंसा करते हैं, हजारों का जो पोषण करता है, बहुत तेजस्वी विषेष प्रकाष की अपेक्षा भी अधिक प्रकाषमान् बल बढ़ाने वाले धन को हमें दें' ।[28]

दीर्घायुष्य की प्रार्थना सम्बन्धी सामवेद के एक मन्त्र में उल्लेख है कि 'अग्ने! दीर्घ आयु हमें दे, हमें बल और अन्न दे और राक्षसों को दूर कर' ।[29]

लोकहितकारी भावना को बतलाते हुए सामवेद के एक अन्य मन्त्र में कहा गया है कि 'हे देवो! कानों से हम कल्याण करने वाली बातें सुने। हे याजकगण! आँखों से हितकारी दृष्य ही देखें, मजबूत अवयवों वाले शरीर से तुम्हारी स्तुति

करते हुए देवों के द्वारा नियत की गई आयु को हम प्राप्त करके अन्त तक हम कार्य करते रहें'।[30]

वैदिक संस्कृति की समष्टिमय भावना सामवेद के एक अन्य मन्त्र में परिपूर्णता को प्राप्त हुई है। इसमें ऋषि कहता है कि 'बहुत प्रषंसित इन्द्र हमारा कल्याण करने वाला हा, सर्वज्ञ पूषा हमारा कल्याण करने वाला हो, अहिंसित शस्त्रों के पास में रखने वाला सुपर्ण हमारा हित करने वाला हो। ज्ञान का स्वामी हमारा कल्याण करें'।[31]

'माताभूमिः पुत्रोऽहंपृथिव्याः' में वैदिक ऋषि ने भूमि को माता और स्वयं को उसका पुत्र मानकर जो निकटतम सम्बन्ध स्थापित किया है, वह विष्व के लिये गौरव का विषय है।

पाद टिप्पणी–सन्दर्भ

1 सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।। ऋग्वेद, 10–191–2.

2 समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।। वही०, 10–191–4.

3 उदह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि। यांष्च पष्यामि यांष्च न तेषु मा सुमतिं कृधि। अथर्ववेद, 17–1–7.

4 सहृदयं सांमनस्यमविर्द्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।। वही०, 3–30–1.

5 ज्यायस्वन्तष्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराष्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि।।वही० 3–30–5.

6 देहि में ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे।
निहारं च हरासि में निहारं नि हराणि ते स्वाहा।। यजुर्वेद, 3–50.

7 शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर। अथर्ववेद, 3–24–5.

8 ईषा वास्यमिदं सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।। यजुर्वेद, 40–1.

9 विष्वदानीं सुमनसः स्याम पष्येन नु सूर्यमुच्चरन्तम्। ऋग्वेद, 6–52–5.

10 मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।। अथर्ववेद, 3–30–3.

11 अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्।। वही०, 3–30–2.

12 भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजष्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु।। वही०, 19–41–1.

13 विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।
यद्भद्रं तन्न आ सुव। यजुर्वेद, 30–3.

14 सोमारूद्रा वि वृहतं विषूची ममीवा या नो गयमाविवेष।
आरे बाधेथां निर्ऋतिं पराचै रस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु।। ऋग्वेद, 6–74–2.

15 मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सरवायं केवलाघो भवति केवलादी।। वही०, 10–117–6.

16 आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विष्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः।

देवा नो यथा सद्मिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे।। वही०, 1–89–1.

17 कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।। यजुर्वेद, 40–2.

18 यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपष्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति। वही०, 40–6.

19 बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम्।
त आ गतावसा शन्तमेनाथा नः शं योररपो दधात्।। वही०, 19–55.

20 समञ्जन्तु विष्वेदेवाः समापो हृदयानि नौ।
सं मातरिष्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ।। ऋग्वेद, 10–85–47.

21 शर्म च स्थो वर्म च स्थोऽछिद्रे बहुले उभे।
व्यचस्वती सं वसायां भृतमग्निं पुरीष्यम्।। यजुर्वेद, 11–30.

22 यदग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये।
यच्छूद्रे यदर्ये यदेनष्चकृमा वयं यदेकस्याधि धर्मणि तस्यावयजनमसि।। वही०, 20–17.

23 यज्जाग्रतो द्रमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः षिवसङ्कल्पमस्तु ।। यजुर्वेद, 34–1.

24 अहानि शुं भवन्तु नः शं रात्रीः प्रति धीयताम्।
शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या।
शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः।। वही०, 36–11.

25 अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः।
तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे विचष्टे सवितायमर्यः।। ऋग्वेद, 10–34–13.

26 अव ज्यामिव धन्वनो मन्युं तनोमि ते हृदः।
यथा संमनसौ भूत्वा सखायाविव सचावहै।। अथर्ववेद, 6–42–1.

27 या मा लक्ष्मीः पतयालूरजुष्टाभिचस्कन्द वन्दनेव वृक्षम्।
अन्यत्रास्मत्सवितस्मामितो धा हिरण्यहस्तो वसु नो रराणः।। वही०, 7–115–2.

28 अभी नो वाजसातमं रयिमर्ष शतस्पृहम्।
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम्।। सामवेद, 5–6–5.

29 अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम्।। वही०, 6–5–1.

30 भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पष्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यषेमहि देवहितं यदायुः वही०, 21–9–2.

31 स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विष्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।। वही० 21–9–3.